ORIGINAL RESEARCH PAPER Hindi

रीतिकालीन काव्य में चित्रित सामन्ती जीवन

KEY WORDS:

विनोद कुमार एम.ए.हिन्दी, नेट, बी.एड गांव कर्मगढ़, पोस्ट ऑफिस साहूवाला–1 जिला सिरसा–125055 (हरियाणा)

बर्नियर के अनुसार शाहजहाँ की लाल किले से जामा मस्जिद तक की यात्रा यूरोपियन बादशाहों के जुलूसों से भी अधिक शान और ठाठ वाली होती थी। उसने लिखा है, बादशाह शुक्रवार को नमाज के लिए जामा मस्जिद जाता है। दरवाजे से मस्जिद तक सड़क के दोनों ओर तीन चार सौ सिपाही पंक्तिबद्ध, हाथों में सुन्दर–सुन्दर बन्दूकें तथा लाल रंग की बनात लिए खड़े रहते हैं। सम्राट सजे हुए हाथी पर, सुनहरी बेल–बूटे के काम वाले हौदे में सवाद होकर अथवा आसमानी या सुनहरी पालकी पर सवार होकर जाता है, जिसका कामखाब या मखमल से मढ़े डण्डों के द्वारा भारी वर्दी वाले आठ कहार कंधों पर उठाते हैं। पीछे अनेक अमीर घोड़ों व पालकियों पर सवार होकर चलते हैं। मनसबदार, चौबदार आदि उच्चाधिकारी चाँदी की छड़ियाँ लिए पीछे–पीछे चलते हैं। उन्होंने आगे लिखा है कि मैं इस सवारी की समता रोम के सुल्तान की शानदार सवारी से या यूरोपियन बादशाहों के जुलूसों से नहीं कर सकता, क्योंकि इसकी शान और ठाठ कुछ और ही है।[1] अमीरों की सवारियाँ भी ठाठ–बाट की होती थीं। वे घोड़ों या अच्छी वर्दी वाले छः–छः कहार द्वारा उठायी पालकी पर सवार होकर चलते थे, जिसमें पीछे सुनहरे और जरी के तकिए रहते थे और होठों को लाल तथा मुँह को सुगंधित रखने के लिए पान। पालकी के एक ओर चाँदी या चीनी का उगलदान तथा दूसरी ओर दो नौकर मोरछल लिए रहते थे। तीन–चार प्यादे आगे–आगे लोगों को हटाते और थोड़े से बहादुर सवार पीछे–पीछे चलते थे।[2] वस्तुतः उस समय कोई भी प्रतिष्ठित या धनी व्यक्ति बिना नौकरों के रहता ही न था।[3] अमीर तो ठाठ–बाट में अपने स्वामी से प्रतिस्पर्द्धा करता ही था, साधारण सैनिक भी अपने तंबुओं में आराम के साधन जुटाने का प्रयत्न करते थे।[4] इसलिए कूच के दौरान में हाथियों, उफँटों, गाड़ियों तथा बैलों की लम्बी–लम्बी कतारें चलतीं और बीच–बीच में पिछलगुओं, हर वर्ग की स्त्रियों, व्यापारियों, नौकरों, रसोइयों तथा हर प्रकार की विलास–वस्तुएँ जुटाने वालों की भीड़ लगी रहती, उन सबकी संख्या लड़ने वालों से दस गुनी तक पहुँच जाती थी।[5]

शाही शानो–शौकत एवं ऐश्वर्य तथा वैभव के अनुकूल ही मुस्लिम शहंशाहों के भवन होते थे।[6] इनकी साज–सज्जा पर अपार धनराशि व्यय की जाती थी। कीमती कपड़ों के पर्दे बनाए जाते थे तथा रेशम और मखमल के वस्त्र–अलंकरण हेतु प्रयुक्त होते थे। मूल्यवान विदेश कालीन, पलंग, दर्पण तथा कलापूर्ण ढंग के बने बर्तन आदि अन्य सामग्रियों से भी सजावट की जाती थी। महलों में बेगमों की योग्यता और पद के अनुसार अलग–अलग बहुत सुन्दर और बड़े–बड़े महल होते थे, जिनके दरवाजों के सामने फव्वारों से युक्त हौज, छोटे–छोटे सुन्दर बाग होते थे, जिनमें फव्वारे, क्यारियाँ, नहरें, छायादार छोटी–छोटी आरामगाहें, गहरे तहखाने, ऊँचे–ऊँचे चबूतरे और सहन होते थे। सोने के वर्क चढ़े हुए मीनाकारी के काम किए बहुत सुन्दर और बड़े–बड़े शीशे, नदी की ओर बनी बुर्जियों व अन्य भवनों में लगे रहते थे।[7] बादशाह, राजकुमार राजकुमारियों के शयन–कक्ष, स्नानागार, आरामगाह आदि भी रंग–बिरंगे व साज–सज्जा से युक्त होते थे।

ऐंद्रिय सुख या भोग–विलास और ऐश्वर्य–वैभव में अटूट संबंध होता है। इन शासकों के अन्तःपुरों में भी सुरा और सुन्दरी का नग्न नर्तन होता था। रानियों, रखेलों, दासियों के रहते हुए भी वेश्याओं का जमघट रहता था। अमीरों का जीवन अत्यधिक विलासमय होता था। विशाल महलों में अनेक दास–दासियों के साथ भोग–विलास का जीवन व्यतीत करना प्रत्येक अमीर अपना अधिकार समझता था। मुगलकाल में उनकी विलास–प्रवृत्ति चरमसीमा तक पहुँच गई थी।[8]

उस समय मद्यपान मुख्य व्यसन था जो पुरुषों में ही नहीं, वरन् स्त्रियों में भी था। शाही महलों की स्त्रियाँ विशेष रूप से मद्यपान करती थीं।[9] औरंगजेब को छोड़कर अन्य सभी मुगल सम्राट दिन में कई बार शराब पीने के शौकीन थे।[10] कहा जाता है कि शाहजहाँ ने दक्षिण भारत में युद्ध–अभियान के दौरान सारी शराब चंबल नदी में फिंकवा दी थी और मूल्यवान सोने–चाँदी के प्याले गरीबों और दुखियों में बँटवा दिए थे।[11] किन्तु परवर्ती अधिकतर सम्राट मदिरा, नृत्य, भोग–विलास, मनोविनोद में ही अपने दिन व्यतीत करते थे। राजा–महाराजा, अमीर, सामंत आदि उच्च वर्ग के लोग भी इस व्यसन से मुक्त नहीं थे।

उनका भोजन बहुमूल्य, विशिष्ट तथा स्वादिष्ट होता था जिसे देशी और विदेशी पाकशास्त्र कला में पारंगल सैंकड़ों रसोइये तैयार करते थे। कभी–कभी एक हजार प्रकार के व्यंजन परोसे जाते थे। इनमें विदेशी व्यंजनों की ही अधिकता रहती थी। अनेक सोने–चाँदी की कलापूर्ण रकाबियाँ, प्याले, कटोरियाँ आदि सरकारी कारखानों में भी तैयार की जाती थीं। विशेष अवसरों पर इस समस्त भंडार का वैभवपूर्ण ढंग से प्रदर्शन किया जाता था।[12] विदेशी मदिरा, विदेशी फल और देश–विदेश के सुरुचिपूर्ण व्यंजनों की कलात्मकता देखकर लोग आश्चर्यचकित रह जाते थे। वस्तुतः इन सारे प्रदर्शनों के मूल में सम्राट की यह इच्छा रहती थी कि वह विदेशी दूतों को यह दिखला दे कि वह अपने धन, सभ्यता, संस्कृति, सुरुचि तथा साधनों में विदेशी शासकों से बढ़कर है तथा विदेशों में जो वस्तुएँ अंश–अंश से मिलती हैं, वे सब उसके पास एक साथ मौजूद हैं। इस तरह से सम्राटों की रसोईघर मं प्रतिदिन हजारों रुपए खर्च होते थे। मनूची के अनुसार औरंगजेब के समय में रसोईघर का व्यय एक हजार रुपया प्रतिदिन था, जबकि उसने अपनी निर्दयी प्रवृत्तियों के कारण अनेक भत्ते घटा दिए थे।[13] वैभव–प्रदर्शन के लिए बड़ी–बड़ी दावतें भी दी जाती थीं।

अमीर, सामंत आदि भी बहुव्यय–साध्य तथा विलासपूर्ण व्यंजनों के शौकीन थे। अपनी मनपसंद की भोज्य वस्तुएँ तैयार करवाने में बहुत खर्च करते थे। दुर्लभ फल, विदेशी मदिरा, रहस्यपूर्ण उबाले हुए पदार्थ, जिनका प्रचलन ईरान–समाज में था, हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों के ही धन–सम्पन्न वर्गों में लोकप्रिय थे। ग्रीष्म ऋतु में अर्थ का प्रयोग होता था। मनोरंजन के लिए उस समय आमोद–प्रमोद के अनेक साधन विद्यमान थे। आखेट, चौगान, गंजीफा, पशुयुद्ध, मल्लयुद्ध, घुड़–दौड़, पासा आदि खेलने में ये विशेष आनंद लेते थे। विलास की अगणित ललित–क्रीड़ाओं का संचय था। अन्तःपुर में शतरंज, चौसर, गंजीफा के खेल इनका मनोरंजन करते थे, बाहर शिकार या पतंगबाजी। तरह–तरह के पशु–पक्षी, कबूतर, लाल तोता, मैना आदि के स्वरों से रनिवास गूँजते रहते थे। अकबर के जमाने के हाथी और चीतों की लड़ाई का स्थान अब बाज और शिकरों ने ले लिया था।[15] सम्राट मोहम्मद शाह सुदूर एवं सुरक्षित स्थान पर बैठकर दो या तीन भालुओं के जोड़ों या बकरी, मेढ़े, जंगली सूअरों की लड़ाई देखा करता था। शाही परिवार की स्त्रियाँ चौसर, चौगान आदि खेलों में अधिक रुचि लेती थीं। औरंगजेब की बड़ी लड़की जेबुन्निसा अपना खाली समय सहेलियों के साथ चौपड़ खेलने में व्यतीत करती थी।[16]

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य का प्रमुखतम भाग दरबारों तथा सामन्तों के रजवाड़ों से जुड़ा हुआ है। हिन्दी भाषा के उदय एवं विकास से पूर्व संस्कृत भाषा ने भी राजदरबारों में प्रवेश प्राप्त कर लिया था तथा संस्कृत के कविगण इन सामन्तों और शासकों द्वारा सम्मानित एवं पुरस्कृत होते रहे। परवर्ती समय में संस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत और अपभ्रंश के कवियों को भी राजदरबारों में सम्मानपूर्वक स्थान मिलने लगा। परन्तु हिन्दी का कुछ ऐसा दुर्भाग्य था कि उसके जन्म के साथ ही उत्तर–पश्चिम के आक्रमणकारियों ने समस्त हिन्दी प्रान्त को आक्रान्त कर दिया। उत्तर भारत में मुसलमानों के पैर जम जाने के बाद राजस्थान के अतिरिक्त प्रायः समस्त हिन्दी प्रदेश मुसलमान भू–सामन्तों के अधीन हो गया और उन रजवाड़ों से संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और जन भाषा के कवि बहिष्कृत हो गए। राजस्थान में भी राजपूत राजा प्रायः युद्धों में लगे रहते थे। वस्तुतः युद्ध करना उनका स्वभाव–सा हो गया था। ऐसी स्थिति में स्थानीय राजाओं के दरबारों में जो कवि थे उन्हें अपने कौशल–प्रदर्शन का पर्याप्त अवसर प्राप्त नहीं होता था। वस्तुतः 15वीं शती तक हिन्दी की दरबार से संबद्ध कविता अत्यन्त क्षीण थी। मुगलों का राज्य स्थापित हो जाने के बाद फारसी भाषा के साथ–साथ हिन्दी तथा अन्य भारतीय जन–भाषाओं को भी दरबारों में सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगा तथा जिसके परिणामस्वरूप 16वीं शताब्दी में नूतन दरबारी–सामन्ती संस्कृति का उदय एवं प्रचार–प्रसार होने लगा। यद्यपि तुलसीदास, सूरदास, कुम्भनदास तथा अन्य कवियों ने इसका प्रतिरोध किया परन्तु केशवदास, भूषण आदि कवियों के समक्ष यह विरोध दब–सा गया।

यह नई दरबारी कविता अपने साथ नव विषय–वस्तु को लेकर भी उपस्थित हुई यथा– स्तुतिपरक अथवा प्रशंसापरक काव्य–सृजन, वैभव एवं ऐश्वर्यपरक जीवन–दृष्टि का प्रचार–प्रसार, दरबार एवं उससे जुड़ी जीवन–शैली तथा आवश्यकताओं का प्रतिपादन, भोग–विलास, प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण इस दरबारी कविता के प्रमुखतम अंग थे। नायक–नायिकाओं के मिलन और विरह, उनकी मान और अभिसार की चर्चा में कविगण मुग्ध थे। विलासिता के इस युग में राजा–नवाबों का अन्तःपुर भिन्न वय और रुचि की नायिकाओं से भरा–पूरा था। युद्ध और राजकार्य से अवकाश पाने पर उन राजाओं का मन उसी ओर दौड़ता था और कविगण इस मनोविनोद के सखा और सहायक थे। राधा–कृष्ण का आलम्बन इन कवियों को प्राप्त हो गया और राधा–कृष्ण की ओट में वे युग की वासना का चित्रण कर रहे थे।

पद्माकर के शिशिर–संबंधी पद्य में इसी प्रकार के विलास–प्रसाधनों का उल्लेख है। विलास की सामग्री से जगर–मगर भव्य भवनों की शोभा स्वर्ग–तुल्य होती थी। उत्सवों और पर्वों में तो इनकी शोभा देखते ही बनती थी। जयसिंह के भवन दर्पण के धाम थे, बिहारी ने उनके 'शीश–महल' को कामदेव के कामव्यूह की संज्ञा दी। नगर से बाहर चित्र–विचित्र उपवन और उद्यान तथा रमणीक सरोवर सुशोभित थे, कवियों ने उनका भी तन्मय होकर वर्णन किया है।

इस प्रकार कवियों ने अपने आश्रयदाताओं के ऐश्वर्य–वैभव और विलास की अधिक से अधिक अभिव्यक्ति की है क्योंकि इस काल का कवि अपने आश्रयदाताओं के भोग–परक जीवन को देखकर और उस प्रकार के जीवन को यश और सम्मान का कारण समझकर उसे कल्पना और वाग्वैदग्ध्य के बल पर अपनी चरमसीमा तक घसीट ले जाने के लिए उत्साहित था। इस तरह उन्होंने यथार्थ के अंतर्निहित संभावनाओं का प्रसार किया है।

काव्यगत नायक और नायिका के आवास–भवन या रंग–भवन, वेश–भूषा, रहन–सहन, हाव–भाव इत्यादि में भी विलासिता तथा वैभव का अंकन है। नायिका के गगनचुंबी भव्य भवन विलासपूर्ण तथा वैभव से दीप्त हैं। उनमें कई खण्ड और कई तल्ले हैं। इन भवनों में सड़कों की ओर निर्मित झरोखों में से, नायक की प्रतीक्षा करती नायिका 'पावकझर–सी' झाँक जाती है। कोई–कोई महल, विशेष रूप से उपरी महल, चन्द्रमा की भाँति शुभ्र और वृत्ताकार होता है। स्फटिक शिलाओं में निर्मित उन महलों का वैभव चाँदनी रात में दूध के फेन की भाँति उद्वेलित हो उठता ळें

निष्कर्ष

इस सामंती परिवेश के संरक्षण में संपोषण पाने वाला साहित्य वैभव–विलास की

अभिव्यक्ति से परिपूर्ण हैं। कवियों और कलावंतों का स्वयं का जीवन काफी ठाठ–बाट का था, इसलिए उनकी सौन्दर्य–चेतना का प्रवाह अंतरंग न होकर बहिरंग हो गया था। उनकी कलात्मक अथवा संवेदनात्मक दृष्टि सामंत वर्ग से जुड़ गई थी जिससे वे इसी जीवन को चरम संतुष्टि का साधन मानते थे। ग्रामीण और जन–साधारण के जीवन को वे अपनी रचनाओं में विशेष स्थान नहीं दे सके, फिर इस निर्धन वर्ग के पास इन राजसी कलाकारों को पुरस्कार देने के लिए न तो धन था और न उनकी रचनाओं को समझने की बुद्धि। इस प्रकार राजसी वैभव–विलास या उच्च वर्ग के सुख–साधनों में विलासित जीवन ही उनकी रचनाओं के आधार पर बना है, यहाँ तक कि उनके नायक और नायिका भी सामंती छाया से नहीं बच सके हैं। उनके क्रियाकलापों में सामंती वैलासिक जीवन की ही अभिव्यक्ति मिलती है। कलाओं में इस वैभवपूर्ण एवं विलासपरक वातावरण की अभिव्यक्ति दो प्रकार से हुई है, प्रथम, राज–वैभव और राज–विलास का सीधा वर्णन, जिसमें कलाकारों ने वास्तविकता और संभावना का संयोग किया है। कवियों की नायिकाएँ भी वैभव–संपन्न और अतिसुकुमार हैं, मखमल पर उनके पैर छिलते हैं और फूलों की शय्या पर छाले पड़ जाते हैं। छाले पड़ने के भय से नाइन नायिका के पैर छूने में डरती है। वस्तुतः इन अतिश्योक्तियों में तत्कालीन विलास और वैभव की यथार्थता ही प्रतिबिंबित हुई है। विलासपरक एवं ऐश्वर्यपूर्ण वर्ण्य–विषयों के अतिरिक्त इन कलाओं को स्वरूप प्रदान करने वाले साधन (पदार्थ) भी बहुव्ययी तथा आश्रयदाताओं की रुचियों के अनुरूप हैं।

संदर्भ –

1. अवध बिहारी पाण्डेय, उत्तरमध्यकालीन भारत, पृ. 288
2 वही, पृ. 292
3 आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, मिडिबल इण्डियन कल्चर, पृ. 37
4 वही, पृ. 726
5 वही
6 डॉ. असद अली, मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव, पृ. 160
7 डॉ. असद अली, मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव, पृ. 78–79
8 दिनेशचन्द्र भारद्वाज, मध्यकालीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति, पृ. 11
9 वही, पृ. 54
10 पी.एन. चोपड़ा, सम एस्पेक्ट्स ऑपफ सोसायटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल ऐज, पृ. 47
11 वही, पृ. 48
12 अवध बिहारी पाण्डेय, उत्तर मध्यकालीन भारत, पृ. 553
13 एम.ए. अंसारी, सोशल लाइफ ऑपफ दि मुगल इम्परर्स, पृ0 18
14 डॉ. नगेन्द्र, रीतिकाव्य की भूमिका, पृ. 13
15 वही, पृ. 4
16 पी.एन. चोपड़ा, सम एस्पेक्ट्स ऑफ सोसायटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल ऐज, पृ. 59
17 देव ग्रन्थावली, देवसुधा, छन्द 39